Volume-13, No. 1 Feb.-2026, pp. Hin.05-09

ममता कालिया के उपन्यास 'दौड़' में बढ़ते बाजारवाद के कारण युवा वर्ग की बदलती मानसिकता

श्रीमति सुदेश रानी, शोधार्थी
पी.एच.डी., हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली भारत।

सार–
ममता कालिया के लघु उपन्यास 'दौड़' को इक्कीसवीं सदी का पहला उपन्यास माना गया है किंतु इसको मानने और कहने पर हो सके कि काफी कुछ सुनना पड़े। इसलिए लेखिका ने इसके बारे में स्पष्ट कहा है कि लेखिका का उद्देश्य न तो किसी उपन्यासकार को कम आँकने का है, न ही बढ़चढ़ कर कोई फतवा जारी करने का है। हो सकता है लोगों के पास ऐसी एक सूची हो जोकि कोई उपन्यासकार का कोई उपन्यास अमुक दिन महीने साल को इतने बजकर इतने मिनट इतने सेकंड पर लिख लिया गया था। छपने के लिए भेज दिया था या छप कर आ गया था, इसलिए इक्कीसवीं सदी का पहला उपन्यास 'दौड़' तो कहीं ठहरता ही नहीं। इस उपन्यास को दिनांक क्रमानुसार पहला उपन्यास नहीं, समय की बजाय अँगुलियाँ रखने और भूमण्डलीकरण अथवा उदारीकरण या उत्तर उपनिवेशवादी दौर में आये शिक्षा, रोजगार और अन्य सामाजिक परिवर्तनों को सूक्ष्मता से देख पाने और सृजनात्मक पथ पर खूबसूरती से एक दीप जला पाने के कारण कहा है।

इस काल को संक्रमण काल कहा जा सकता है, इसमें इन्होंने भूमंडलीकरण और उत्तर औद्योगिक समाज को इक्कीसवीं सदी में युवा के सामने एकदम नये ढंग के रोजगार और नौकरी के रास्ते खोल दिये है। एक समय था जब हर विद्यार्थी का एक ही सपना था–पढ़–लिखकर सरकार की सेवा में चुना जाना। कुछ की पारम्परिक महत्वाकांक्षाएँ होती थीं। इनके अन्तर्गत डॉक्टर की बेटी डॉक्टर और इंजीनियर का बेटा इंजीनियर बनना चाहता था। तब बाजार इतना आकर्षक विशाल और व्यापक नहीं हुआ था कि युवा वर्ग इसे अपने सपनों में शामिल करे। तब बाजार का मतलब था एक ऐसी जगह जहाँ हम अपनी जरूरतें पूरी करते हैं और थककर घर लौट आते थे। उस समय का बाजार इतना चमकदार और चटकीला नहीं था कि आप अपनी पूरी जेब खाली कर आते।

इस तरह तकनीक में क्रान्तिकारी बदलाव आये हैं। मनुष्य तकनीक के हाथों में खेलने लगा है। जगदीश्वर चतुर्वेदी ने इस दौर को नेटवर्क की संस्कृति का दौर कहा है। उनके अनुसार एक जमाना था, किताबें बड़ी थीं, आज डाटा महान है। इसने मानव सभ्यता की गति के अब तक के सभी मापदण्ड तोड़ दिये हैं। 'संस्कृति वही नहीं है जो परम्परागत अभिव्यक्ति के रूपों में उपलब्ध है, धरती पर है, बल्कि संस्कृति यह भी है जो ऑनलाइन है। आकाश गंगा में है, डिजिटल में कैद है। डिजिटल संस्कृति ने व्यक्तिवादी और सामूहिक भूमिकाओं के नये आयाम खोले हैं। उपन्यासकार ममता कालिया उपभोक्तावाद को बखूबी समझ रही हैं। जहाँ वह उच्चवर्ग के लिए प्रदर्शन वहीं सामान्य जन के लिए जीना कठिन बनाता है। उनके अनुसार समाज में इतनी हिंसा और भौतिक हित–साधन की कामना इससे पूर्व मैंने कभी नहीं देखी। अपनी संवेदनाओं को स्थगित करते हुए मनुष्य एक ऐसी दुनिया में बसने को आतुर है, जहाँ संस्कृति की जगह उपभोक्ता संस्कृति है और एथिक्स की जगह प्रोफेशनल एथिक्स। पूँजीवादी व्यवस्था में सांस्कृतिक चीजों का महत्त्व बाजार में उनकी कीमत से ही क्या तय नहीं होता? इस व्यवस्था में गरीब और गरीब तथा अमीर और अमीर होता है।

प्राइवेट कम्पनियाँ कम वेतन देकर ज्यादा काम चाहती हैं। उपन्यास के शुरू में ही जब चित्रेश दो जम्प्स (वेतन वृद्धि) माँगता है, कम्पनी उसे जम्प आउट करना ही बेहतर समझती है। कहीं भी काम बेहतर हो दाम के मुताबिक पवन घर से अठारह सौ किलोमीटर दूर नौकरी कर रहा है।

एम.बी.ए. के बाद घर नहीं बैठ सकता। माता–पिता चाहते हैं कि वह उनके पास रहकर ही नौकरी करे परन्तु उसका जवाब है– 'यहाँ मेरे लायक सर्विस कहाँ? यह तो बेरोजगारों का शहर है।'

कम्पनी की नौकरी कर रहे लड़कों पर हर समय ज्यादा बिक्री के लिए दबाव दिया जाता है। वे जब आपस में मिलते हैं तो मौसम, किसी पुस्तक, लोकप्रिय सिनेमा अथवा संस्कृति की बातें कम करते हैं। दिये गये टारगेट और बिक्री का ग्राफ ऊपर ले जाने की बातें ज्यादा करते हैं। शरद और पवन के बीच बातचीत चल रही है–

'अभी हेड ऑफिस से फैक्स आया है कि साल की अगली खेप भिजवा रहे हैं। अभी पिछला माल बिका नहीं है। दुकानदार कहते हैं, वे और ज्यादा माल स्टोर नहीं करेंगे, उनके यहाँ जगह की किल्लत है। ऐसे ये मेरी सनसाइन श पालिश क्या करे' डीलर को कोई गिफ्ट ऑफर दो, तो वह माल निकाले, सबकी सनशाइन रखने के लिए बॉल रेक दिये हैं. डीलर्स कमीशन बढ़वाया है पर मैंने खुद खड़े होकर देखा है. काउंटर सेल नहीं के बराबर है। पवन ने सुझाव दिया, कोई रणनीति सोची। कोई इनामी योजना 'होलिडे' पर बनाई जाती है। लेखिका ने 'दौड़' में इन नवयुवकों की दशा का चित्रांकन करती हैं जो घर छोडकर नौकरी करने निकले हैं– अटेची में कपउे और आँखों में सपने लिए न जाने कहाँ–कहाँ से नौजवान लड़के नौकरी की तलाश में इस शहर में आ पहुँचते हैं। बड़ी–बड़ी सर्विस इंडस्ट्री में कार्यरत ये नवयुवक सबेरे नौ से रात नौ तक अथक परिश्रम करते हैं। सफलता के संघर्ष में घर और बाहर का अन्तर बताते हुए कहा– 'कहाँ घर में ये लड़के शहजादो की तरह रहते थे, कहाँ सारी सुख–सुविधाओं से वंचित, घर से इतनी दूर सफलता के संघर्ष में लगे हैं। न इन्हें भोजन की चिन्ता है न आराम की। एक आँख कम्प्यूटर पर गड़ाए ये भोजन कर लेते हैं शांति से भोजन नहीं खा पाते और फिर लग जाते हैं कम्पनी के व्यापार लक्ष्य सिद्ध।' सिद्धि के बारे में कुछ ऐसा कि– ''व्यापार या लाभ लक्ष्य इतने ऊँचे होते हैं कि सिद्धि का सुख हर एक को हासिल नहीं सिद्धि इस दुनिया में एक चार पहिया दौड़ है जिसमें स्टेरिंग आपके हाथ में है पर बाकी सारे कंट्रोल्स कंपनी के हाथ में वही तय करती है आपको किस रफ्तार से दौड़ना है और कब तक।'' दर असल बाजार में दिन पर दिन स्पर्धा कड़ी होती जा रही थी उत्पादन विपणन एवं विक्रय के बीच ताल मेल बनाना दुष्कर कार्य था एक–एक उत्पाद की टक्कर में उत्पाद थे इन सबको श्रेष्ठ बताते विज्ञापन में अभियान थे जिनके प्रजापत से मार्केटिंग का काम आसान की बजाय मुश्किल होता जाता उपभोक्ता के पास एक–एक चीज के कई चमकदार विकल्प थे। पति पत्नी संबंध भी इस उपभोक्तावादी समाज में बदल रहे हैं राजुल महसूस करती है कि हिंदुस्तानी मर्द को शादी के सारे सुख चाहिए बस जिम्मेदारी नहीं चाहिए उसे शादी करने पर अच्छी वाली नौकरी छोड़नी पड़ी जब किसी के लिए कह रही थी की आजादी चौपट हो जाएगी शादी करके आजकल तो रिस्क का जमाना है डबल इनकम नो किड्स दोहरी आमदनी बच्चे नहीं। उपन्यास में अभिषेक की कंपनी क्रिसेंट कारपोरेशन के 90 लाख का प्रचार अभियान मिला विज्ञापन इस बाजार का नुकिला हथियार है। वह यह महाजाल है जिसमें मध्यम वर्ग का व्यक्ति फंसता और छूट नहीं पता, यह जरूर के बिना जरूरत बनाता है। यह कर्ज लेकर भी गाड़ी खरीदने का अन्धा हो जाता है यह अपना पीड़ा और छटपटाहट को खुद आमंत्रित करता है हर घर का बड़ा आदमी बच्चों के उपभोक्तावादी मांग पर खुद को पराजित पाता है। विज्ञान के लिए मॉडल जरूरी है विजुअलाजर आइडिया देगा स्क्रिप्ट लिखी जाएगी प्रचार की एक दिक्कत है किसी उत्पाद के प्रचार के लिए एक ही मॉडल का चेहरा दिन में कितनी बार मीडिया संचार पर दिखाया जाता है कि वह इस उत्पादन के विज्ञापन से चिपक कर रह जाता है सौंदर्य उपचार की आड़ में गलत धंधे होते हैं इसका भी उपन्यास में संकेत है विज्ञान कंपनी की दुनिया परिवर्तन और आकर्षक से भरपूर थी सॉल्व सच्चाई नहीं प्रोडक्ट बेचने का क्या बाजार है, इस मोड़ पर नैतिकता का स्वर उठाया जा सकता है राजू के ऐसा सवाल उठाने पर अभिषेक भनक जाता है सीधा–साधा एक प्रोडक्ट बेचना है इसमें तुम नैतिकता और सच्चाई कैसे सवाल मेरे सिर पर दे मार रही हो मैं आईआईएम में दो साल भर नहीं झोंका वहां से मार्केटिंग सीख कर निकल रहा हूं आई कैन सेल ए डेड रेट में मरा हुआ चूहा भी बेच सकता हूं जैसा चीज दिखता सब में दर्ज कर बाजार के अर्थशास्त्र में नैतिकता जैसा शब्द लगाना कंफ्यूजन है– ''मैंने अब तक 500 किताबें मैनेजमेंट और मार्केटिंग पर पढ़ी होंगी उनमें नैतिकता पर कोई चौप्टर नहीं है।''

राजेश्वर सक्सेना को पुनः याद करता हूँ जब वह कहते हैं कि जिन्दगी की पकड़ का हर वह विचार जिससे जिन्दगी के रूपान्तरण और परिष्करण का सक्रिय सम्बन्ध होता है, वह टूट रहा है और वह काफी हद तक टूट भी चुका है। बच्चे पढ़–लिखकर या तो अच्छे पैकेज के लिए विदेश भाग रहे हैं या फिर घर से हजारों मील दूर। इस विशुद्ध कैरियरिज्म (आजीविकावाद) से पारिवारिक और विकट सामाजिक स्थितियाँ पैदा हो रही हैं। परिवार कुछ नैतिकता और ज्यादा मोह के खूंटे से बँधे हैं। बच्चों के लिए प्राथमिकता कैरियर और पैकेज प्रदत जिम्मेदारियाँ ऐसी डोरियाँ हैं। यह धारणा मजबूत होती है कि पैसे से सभी कुछ खरीदा जा सकता है। रिश्ते भी। पवन की माँ जब छोटे बेटे सघन के भी घर से दूर जाने की ललक देखती है तो कहती है– "इसको भी ले जाओगे तो हम दोनों अकेले रह जायेंगे। वैसे ही यह सीनियर सिटिजन कॉलोनी बनती जा रही है। सबके बच्चे पढ़–लिखकर बाहर चले जा रहे हैं। हर घर में, समझो एक बूढ़ा एक बूढ़ी, एक कुत्ता और एक कार बस यह रह गया है।''

माता–पिता की हसरतों के सामने आजीविकावादी पुत्र का तर्क है– ''मेरे लिए शहर महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, कैरियर है। अब कलकत्ते को ही लीजिए। कहने को महानगर है पर मार्केटिंग की दृष्टि से एकदम लद्धड़। कलकत्ते में प्रोड्यूसर्स का मार्केट है, कंज्यूमर्स का नहीं है।'' निम्न पंक्तियों खास तौर पर रेखांकित की जानी चाहिए– ''मैं ऐसे शहर में रहना चाहता हैं जहाँ कल्चर हो न हो, कंज्यूमर कल्चर जरूर हो। मुझे संस्कृति नहीं, उपभोक्ता संस्कृति चाहिए। तभी मैं कामयाब रहूँगा।''

पिता राकेश पवन के बहाने एक पूरी की पूरी युवा पीढी को पहचानना चाहते हैं और प्रश्न से टकराते हैं कि ये अपनी जड़ों से कटकर जीने वाले लड़के समाज की कैसी तस्वीर तैयार करेंगे? माता–पिता सदा बच्चों के सुख की कामना करते हैं परन्तु आज की पीढी इस अथाह प्रेम को ग्रीटिंग कार्ड के इंचीटेप से नाप रही है। पवन को शिकायत है कि माँ ने जन्म दिन पर फोन तो किया परन्तु ग्रीटिंग कार्ड नहीं भेजा, उसके सब कलीग्स हँसी उड़ा रहे थे।

यह पीढ़ी अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण कामों को भी कैरियर की भेंट चढ़ा चुकी है। अपने विवाह को लेकर पवन कहता है– हमारे एजेंडा पर बहुत सारे काम हैं। शादी के लिए हम ज्यादा से ज्यादा चार दिन खाली रख सकते हैं। यहाँ यह बताना जरूरी है कि शादी के लिए लड़की पवन ने खुद ढूँढ़ी है। विवाह से पहले दोनों मिल–जुल रहे हैं। शादी को एक डील समझते हैं। विवाह के मुहूर्त को लेकर चिन्तित नहीं हैं और लड़की को पवन धोखा नहीं देना चाहता। विवाह सामूहिक विवाह में बदल रहा है। यानी तामझाम कम हो रहे हैं। स्टैला (पवन की पत्नी) कैलोरी गिन–गिन कर खाती है। स्वाद त्यागा जा रहा है। लड़कियाँ काम (जॉब) के बारे में पहले सोच रही हैं, रसोई के बारे में बाद में। अब उन्हें पिछली पीढ़ी पवन की माँ रेखा की तरह बावर्ची, धोबिन, जमादारिन बने रहने की जरूरत नहीं। परन्तु जो छूट रहा है, वह है स्वाभाविक जीवन और मानवीय सम्बन्ध। वे मंजिलों के लिए संघर्ष कर रहे हैं। पवन के पिता राकेश स्तब्ध हैं– तुम अपनी तरक्की के लिए पत्नी और कम्पनी दोनों छोड़ दोगे? जवाब है– ''छोड़ कहाँ रहा हूँ, पापा, यह कम्पनी अब मेरे लायक नहीं रही। मेरी प्रतिभा का इस्तेमाल अब मेल करेगी। रही स्टैला, तो यह इतनी व्यस्त रहती है कि इंटरनेट और फोन पर मुझसे बात करने की फुर्सत निकाल ले, यही बहुत है।''

उनका दाम्पत्य जैसा कि राकेश कहते हैं, सेटेलाइट और इंटरनेट से ही चलने वाला है। नैतिकता की आवाज इस ग्लास सीलिंग (शीशे की दीवार) के पार सुनाई नहीं देती। पिता कहते हैं– ''एक अच्छी भली लड़की को अपना जीवन साथी बनाकर कुछ जिम्मेदारी से जीना सीखे और बेचारी जीजीसीएल ने उन्हें इतने वर्षों में काम सिखा कर काबिल बनाया है।

(पवन की कम्पनी जिसमें वह कार्यरत रहा) कल तक तुम इसके गुण गाते नहीं थकते थे। तुम्हारी एथिक्स को क्या होता जा रहा है?''

आजीविकावाद के प्रतिनिधि चरित्र के रूप में उपस्थित पवन का उत्तर है– ''आप यह क्या एथिक्स, मौरेलिटी जैसे भारी भरकम पत्थर मारते रहते हो। मैं जिस दुनिया में हूँ, वहाँ एथिक्स की जरूरत नहीं, प्रोफेशनल एथिक्स की जरूरत है। चीजों को नयी नजर से देखना सीखिए नहीं तो आप पुराने अखबार की तरह रद्दी की टोकरी में फेंक दिये जाओगे क्योंकि एम.बी.ए. पिता ने करवाया है, इसलिए कहता है आपने मुझे ऐसे समुद्र में फेंक दिया है जहाँ मुझे ऐसा ही तैरना है।

क्या यह पीढ़ी संघर्ष नहीं कर रही? पवन को अवसर मिलते गये। प्रगति के रास्ते खुल जा

सिम सिम की तरह खुलते गये परन्तु सघन के लिए डगर इतनी आसान नहीं। उसके हॉस्टल में फोन नहीं। वह बाहर से महीने में दो बार फोन करता है। पैसों की तंगी हमेशा बनी रहती है। कम्प्यूटर की महँगी पत्रिकाएँ खरीदने के लिए कभी नाश्ते में कटौती और कभी खाने में कंजूसी करता है। बस के लिए घंटों धूप में खड़ा रहता है। समस्टर पूरा कर घर आने पर माँ–बाप पहचान भी नहीं पाते। ''चेहरे पर हड्डियों के कोण निकल आये थे। शक्ल पर पहले वाला छलकता बचपन गायब हो गया था।''

यह अस्तित्व के लिए संघर्ष है. जिससे व्यापक असमानता के चलते कहीं सुलभ और कहीं दुर्लभ रूप में आँका जा सकता है। ''कितने पाकिस्तान'' उपन्यास में कमलेश्वर ने दर्ज किया– ''जिस दौर के आँसू सूख जाते हैं, उस दौर का अदीब मर जाता है।'' ममता कालिया ने इस इक्कीसवीं ममता कालिया के लघु उपन्यास 'दौड़' को इक्कीसवीं सदी का पहला उपन्यास माना गया है किंतु इसको मानने और कहने पर हो सके कि काफी कुछ सुनना पड़े। परन्तु लेखिका ने इसके बारे में स्पष्ट किया है कि लेखिका का उद्देश्य न तो किसी उपन्यासकार को कम आँकने का है, न ही बढ़चढ़ कर कोई फतवा जारी करने का है। हो सकता है लोगों के पास ऐसी एक सूची हो सकती है कि कोई उपन्यासकार का कोई उपन्यास अमुक दिन महीने साल को इतने बज कर इतने मिनट इतने सेकंड पर लिख लिया गया था। छपने के लिए भेज दिया था या छप कर आ गया था, इसलिए इक्कीसवीं सदी का पहला उपन्यास है ''दौड'' तो कहीं ठहरता ही नहीं। इस उपन्यास को दिनांक क्रमानुसार पहला उपन्यास नहीं, समय की बजाय अँगुलियाँ रखने और भूमण्डलीकरण अथवा उदारीकरण या उत्तर उपनिवेशवादी दौर में आये शिक्षा, रोजगार और अन्य सामाजिक परिवर्तनों को सूक्ष्मता से देख पाने और सृजनात्मक पथ पर खूबसूरती से एक दीप जला पाने के कारण कहा है। इस काल को संक्रमण काल कहा जा सकता है। 'दौड़' उपन्यास में ममता कालिया ने भूमंडलीकरण और उत्तर औद्योगिक समाज ने इक्कीसवीं सदी में युवा के सामने एकदम नये ढंग के रोजगार और नौकरी के रास्ते खोल दिये है। एक समय था जब हर विद्यार्थी का एक ही सपना था–पढ़–लिखकर प्रशासनिक सेवा में चुना जाना। कुछ सहपाठियों की पारम्परिक महत्वाकांक्षाएँ होती थीं। इनके अन्तर्गत डॉक्टर की बेटी डॉक्टर और इंजीनियर का बेटा इंजीनियर बनना चाहता था। तब बाजार इतना आकर्षक विशाल और व्यापक नहीं हुआ था कि युवा वर्ग इसे अपने सपनों में शामिल करे। तब बाजार का मतलब था एक ऐसी जगह जहाँ हम अपनी जरूरतें पूरी करते हैं और थककर घर लौट आते थे। उस वक्त का बाजार इतना चमकदार और चटकीला नहीं था कि आप अपनी पूरी जेब खाली कर आते।

इस बीच तकनीक में क्रान्तिकारी बदलाव आये हैं। सवाल उठ रहा है कि तकनीक मनुष्य का हथियार है या मनुष्य तकनीक के हाथों में खेलने लगा है। जगदीश्वर चतुर्वेदी ने इस दौर को नेटवर्क की संस्कृति का दौर कहा है। उनके अनुसार एक जमाना था, किताबें बड़ी थीं, आज डाटा महान है। इसने मानव सभ्यता की गति के अब तक के सभी मापदण्ड तोड़ दिये हैं। 'संस्कृति वही नहीं है जो परम्परागत अभिव्यक्ति के रूपों में उपलब्ध है, धरती पर है, बल्कि संस्कृति यह भी है जो ऑनलाइन है। आकाश गंगा में है, डिजिटल में कैद है। डिजिटल संस्कृ ति ने व्यक्तिवादी और सामूहिक भूमिकाओं के नये आयाम खोले हैं। बाजार को नयी गति प्रदान की है, उत्पादन और पुनरुत्पादन के नये मानक बनाये हैं।

ममता कालिया ने इस इक्कीसवीं सदी की नयी बयार में आँसुओं को सुखने नहीं दिया। दौड़ में सघन की ताइवान में नौकरी मिलने पर लिखा–

प्रवासी केवल पर्यटक और पंछी नहीं होते, बच्चे भी होते हैं। वे दौड़–दौड़ कर अपने नये सिले कपड़े लाते हैं, सूटकेस में अपना सामान और कागजात जमाते हैं, मनी बेल्ट में अपना पासपोर्ट, वीजा और चंद डालर रख, रवाना हो जाते हैं अनजान देश प्रदेश के सफर पर, माता–पिता को सिर्फ स्टेशन पर हाथ हिलाते छोड़कर।

माता–पिता के पास अकेलापन बचा रहता है, बीमार पड़े तो देख–भाल के लिए कोई नहीं। किसी का देहांत हो तो पहुँच पाने की सीमाएँ। सेमी साहब के देहान्त पर सिद्धार्थ कहता है– 'आप (बॉडी) मुरदाघर में रखवा दीजिए। विदेश में तो महीनों बॉडी मारच्यूरी में पड़ी रहती है। जब बच्चों को फुर्सत होती है, फ्यूनरल कर देते हैं।' जब उसे पता चलता है कि भारत में शव ज्यादा दिनों तक रखना सम्भव नहीं, तब उसको फोन पर सुझाव आता है– आप ऐसा कीजिए, इस काम के लिए किसी को बेटा बनाकर दाह–संस्कार करवाइये।' भारत में अभी संवेदना

सूख नहीं गयी, फूलों में कुछ नैतिकता की इंगत बची है और कुछ संस्कारों की महक। कॉलोनी के लोग पूरा इन्तजाम कर देते हैं। क्योंकि फर्ज पहचानते हैं। ये शब्द हवा में अटके रह जाते हैं– बाजार में सब चीज मोल मिल जाती है पर बच्चे नहीं मिलते।'

छोटू भारत इस शर्त पर लौटकर आना चाहता है, यदि उसके काम शुरू करने के लिए तीस–चालीस लाख की रकम हो। माता–पिता के पास एक डेढ़ लाख से ज्यादा नहीं। उसका सवाल है कि उनके पास ज्यादा पैसे क्यों नहीं हैं? जिसका कोई जवाब नहीं।

ममता कालिया कहीं भी गलत नहीं, जब कहती हैं– जरूरत और हवस में अन्तर करना वह (इक्कीसवीं सदी का आदमी) भूलता जा रहा है। अज्ञेय ने कहा है कि साहित्य किसी एक काल में है किसी एक जाति अथवा समाज की सम्पूर्ण संस्कृति की उपज होता है। इसके वर्तमान में संस्कृति का इतिहास निहित होता है। 'दौड़' उपन्यास में ममता कालिया अपने समय के कँटीले प्रश्नों से जूझती हैं। उपन्यास बेहद रोचक है। छोड़ने को मन ही नहीं होता। इसे पढ़ने की जरूरत है कि बेटे के व्यक्तित्व में भौतिकतावाद, अध्यात्म और यथार्थवाद की कैसी त्रिपथगा बह रही है।

संदर्भ

1. दौड़, पृष्ठ–5, ममता कालिया 'दौड़' (उपन्यास), वाणी प्रकाशन, 2002, नई दिल्ली
2. दौड़ पृष्ठ–20, ममता कालिया 'दौड़' (उपन्यास), वाणी प्रकाशन, 2002, नई दिल्ली
3. दौड़, पृष्ठ–66, ममता कालिया 'दौड़' (उपन्यास), वाणी प्रकाशन, 2002, नई दिल्ली
4. दौड़, पृष्ठ–15, ममता कालिया 'दौड़' (उपन्यास), वाणी प्रकाशन, 2002, नई दिल्ली
5. दौड़ पृष्ठ–20, ममता कालिया 'दौड़' (उपन्यास), वाणी प्रकाशन, 2002, नई दिल्ली
6. सापेक्ष, पृष्ठ–48, ममता कालिया 'दौड़' (उपन्यास), वाणी प्रकाशन, 2002, नई दिल्ली
7. दौड़, पृष्ठ–66, ममता कालिया 'दौड़' (उपन्यास), वाणी प्रकाशन, 2002, नई दिल्ली
8. आधार ग्रंथ, ममता कालिया 'दौड़' (उपन्यास), वाणी प्रकाशन, 2002, नई दिल्ली